दलित जनता और कवि जानने लगे हैं कि उनकी स्थिति की केवल सामाजिक और राजनीतिक शक्ति ही जान सकती है। दलित कवि आज जो अपनी अनुभूतियों के दर्द के दस्तावेज लिख रहे हैं वे निश्चय ही समस्त हाशिए के लिए प्रेरणा और उसके संघर्ष पथ के लिए ज्योतिपुंज का कार्य करेंगी।

समकालीन हिंदी कविता का संरचना पक्ष भाषा है। हमारी सामूहिक स्मृति का आधार भाषा है जो वर्तमान संदर्भ में लगातार नष्ट होती जा रही है। कविता इसे वापिस बुलाने का प्रयत्न करती है। समकालीन कवि विलुप्त होते पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों, दमित होते दलित, आदिवासी तथा स्त्री की प्रतिरोधी भाषा की संरचना करती है। समकालीन कवि प्रतीक, बिम्ब, मिथक एवं फैंटेसी द्वारा असल में प्रतिरोध जाहिर करते हैं। तकनीकी युग में गायब होते शब्दों को वे वापस लौटाते हैं। कठिन समय में शब्द की भूमिका पर विचार करते है। लोक एवं स्थानी शब्दों का प्रयोग ज्यादा हुआ है। वक्तव्य या बयान पर निर्भर समकालीन कविता संवादात्मक एवं विवरणात्मक है। कविता और भाषा का सह-सम्बन्ध, विविध अस्मिताओं से जुड़ी भाषा, कविता का शिल्प-पक्ष, बिम्बधर्मिता, प्रतिरोधी प्रतीक, मिथकीयता, फैंटेस नया शब्द-विन्यास, गद्य शैली, विवरणात्मक शैली, लम्बी कविता शीर्षक विहीन कविता, लोकतत्त्व, स्थानीय भाषा, जनपद की बोलियां आदि की दृष्टि से समकालीन हिंदी कविता के संरचना पक्ष अत्यन्त प्रबल है।

समकालीन हिंदी कविता समसामयिक परिप्रेक्ष्य में नव्योत्तर कविता अपनी विषय-वस्तु की परिधि में समाज की मुख्य धारा से अलग रहने वाली पार्श्ववर्त्ती जनता को रखी गई है। इनके अस्तित्व एवं अस्मिता की खोज करते हुए समकालीन कविता अपनी जनधर्मिता की खोज करते हुए समकालीन कविता अपनी जनधर्मिता खूब पाती है। भूमण्डलीकरण और बाजारवाद का विरोध करते हुए समकालीन कविता वापसी घर, गांव, पृथ्वी, प्यार एवं स्मृति की ओर होती हुई दिखाई देती है। अतीत भविष्य को भी अपने में समेटते हुए चिरन्तन वर्तमान की कविता है ऐसे में ना सबकी पुनर्स्थापना कविता का लक्ष्य है। इसके लिए अपनी एक अलग भाषा लीन कवि गढ़ते हैं जिसके तेवर सचमुच प्रतिरोधात्मक हैं।

6

समकालीन हिंदी कविता संदर्भ भारतीयत्व

राम आह्लाद चौधरी
सम्पर्क : हिंदी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय कलकत्ता
मो. 09432051500

हिंदी कविता में समकालीन हिंदी कविता की भूमिका है। इस भूमिका को किसी ने बीज गणित के रूप में देखने का प्रयास किया है, तो किसी ने इस कविता के सरोकार पर टिप्पणी की है। इस समकालीन कविता के अंतर्गत नारी के अधिकार पर भी चर्चा की गयी है। पर्यावरण के संकट के संदर्भ में समकालीन हिंदी कविता को जब देखने का प्रयास किया जाता है, तब आश्चर्य होता है कि आखिर वे कौन से कारण हैं, जिनके चलते समकालीन कविता का अर्थ भी बदल दिया जाता है। दरअसल आलोचना प्रक्रिया की कमजोरी है, जिसके चलते कविता या समकालीन हिंदी कविता के नाम पर मर्जी के अनुसार कुछ भी चलाया जा सकता है। इससे एक तरह का भ्रम पैदा होता है, जो आम बात है। विधा के उत्पन्न होने से साधारण तौर पर भ्रम पैदा नहीं होता है, भ्रम तब पैदा होता है, जब विधा के साथ गलत रवैया अपनाया जाता है। जब हिंदी कविता की परम्परा और मनीषा से अपरिचित आलोचक समकालीन हिंदी कविता के नाम पर तीन की तलवार भाजने लगते है, तब वे सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, सुदामा पांडे 'धूमिल', लीलाधर जगूड़ी, कुमार विकल, चंद्रकांत देवताले, विनोद कुमार शुक्ल, ऋतुराज, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जैसे महान-महान कवियों के नाम लेने से कतराने लगते हैं। इन कवियों की भूमिका रही है। वैसे समकालीन हिंदी कविता को नयी कविता के विविध आंदोलनों में एक महत्वपूर्ण आंदोलन मानने की प्रथा हिंदी काव्य-आलोचना के अंतर्गत दिखती है। इस पर चर्चा

Scanned with CamScanner

करते हुए कुमार कृष्ण ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'समकालीन कविता का बीजगणित' में लिखा है। "समकालीन कविता 'नयी कविता' के विविध आंदोलनों में एक महत्वपूर्ण आंदोलन है। कविता में इसकी शुरुआत छठे दशक से मानी जाती है। साठोत्तरी कविता इसका समप्रचलित नाम है। समकालीन कविता को एक आंदोलन के रूप में लाने तथा कविता की सही सार्थक पहचान करवाने में धूमिल का नाम अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।" जब-जब समकालीन हिंदी कविता की चर्चा होगी, तब-तब धूमिल का नाम उठेगा और साथ-ही-साथ सपाटबयानी में जीवन को नये बिम्बों में देखने की जरूरत महसूस की जायेगी। लेकिन जब सिर्फ समकालीन कविता की चर्चा होगी तब निश्चित रूप से हिंदी कविता की समसामयिकता पर आलोकपात होगा। इस आलोकपात के जरिये एक हद तक समकालीनता और समसामयिकता के बीच रिश्ता कायम करना किसी तरह से अन्याय नहीं है। यही तो किसी एक कवि की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति को आधार देने के लिए आलोचक जद्दोजहद करते हैं। यह आलोचना की पीड़ा नहीं है। यह सच है कि समकालीन हिंदी कविता ने तनाव को व्यक्त किया। विद्रोह प्रकट करना समकालीन हिंदी कविता की प्रवृत्ति रही है। पर विद्रोह सिर्फ असंतोष के चलते ही प्रकट नहीं होता है। असंतोष की व्याप्ति के राजनीतिक कारण होते हैं। वही समाज की बौद्धिकता को बोलने की जरूरत होती है, लेकिन जब बौद्धिकता मुंह पर ताला लगा लेती है, तो समाज गहरी पीड़ा का शिकार बन जाता है। संघर्ष की वाणी को जब पाथेय नहीं बनाया जाता है, तब गड़बड़ियां पैदा होना स्वाभाविक है। इस पाथेय को आत्मसात करने वाला ही कोई महान कवि बन पाता है। असंतोष को व्यक्तिगत स्तर पर न देखकर उसे सामाजिक स्तर पर देखना जरूरी है। दरअसल राजनीतिक हार-जीत का कोई मसला नहीं है। भारत की पहचान उसकी संस्कृति में है। भारत अनादिकाल से आज तक कभी भी सांस्कृतिक स्तर पर नहीं हारा। सांस्कृतिक जीत के चलते ही भारतीयत्व का गौरव सदा अमर रहा है। इस अमरत्व को हासिल करना ही भारतवासी अपना रचनात्मक संघर्ष समझते हैं। यदि गहराई में जाकर देखने की जरूरत हो, तो कोई यह देख सकता है कि समकालीन हिंदी कविता ने एक सिरे से भारतीयत्व की सांस्कृतिक ओज और शान को नकारा है। भारत की धरती पर हर हमलों को भारतवासियों ने अपनी परिस्थितियों के अनुसार लड़ने का प्रयास किया है। यही कारण है कि भारतवासी राजनीतिक तौर पर हारने के बावजूद भारतीय मनीषा को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किया है। इस सच को रवीन्द्रनाथ ने स्पष्ट करते हुए लिखा है कि भारत का संकट सांस्कृतिक संकट है। इस संकट से देश को बचाने की जद्दोजहद सदा जारी रही है। इसी तरफ महान कवि पंत ने लोगों का ध्यान

आकर्षित किया है। पर इस तरफ ध्यान देने से जो बातें उभरती हैं, वह और भयानक सच हैं, जो किसी के गले के नीचे नहीं उतरता है। आर्थिक संकट के चलते ही सांस्कृतिक संकट पैदा होता है। पर हिंदी के आलोचक उन दोनों के बीच समरसता कायम करने पर जोर देने लगते हैं। इस सम्बंध में यह याद रखना आवश्यक है कि समन्वय की भावना ही भारत की सांस्कृतिक विशेषता है। इस भावना के बिना भारत आगे नहीं बढ़ पायेगा। इससे अधिकतर लोग नाराज हो जाते हैं। क्यों दुःख और क्यों गुस्सा इसकी पड़ताल के बिना वास्तविकता को नहीं पहचाना जा सकता है। इसके लिए विजन चाहिए। विजन को साफ और दुरुस्त रखने के लिए सामाजिक विकास धारा की महती भूमिका पर अमल करना गैर वाजिब नहीं है। समकालीन हिंदी कविता की भूमिका को भारतीय संस्कृति से जोड़ने पर जोर देते हुए यह विचारणीय सवाल है कि क्या काव्य आंदोलनय एक आंदोलन की प्रतिक्रिया में दूसरा आंदोलन है या दूसरा आंदोलन प्रथम आंदोलन की अगली कड़ी है। यह याद रखने का प्रयोजन है कि अग्रगति की धारा में ही आंदोलन का उत्थान होता है। यदि अग्रगति की धारा कमजोर पड़ती है, तो आंदोलन का कोई मतलब नहीं रह जाता है। बिना उद्देश्य के कोई आंदोलन नहीं चलता है। जनता की व्यापक हिस्सेदारी के बिना आंदोलन सफल भी नहीं होता है। आंदोलन को सफल बनाने के लिए जो सबसे बड़ी जरूरत है, वह यही है कि आंदोलन विकल्प पैदा कर पाता है या नहीं यदि आंदोलन में विकल्प पैदा करने की ताकत नहीं है, तो वह आंदोलन लोकप्रिय नहीं हो पाता है, चाहे वह काव्य-आंदोलन हो या जन-आंदोलन। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि जन-आंदोलन के मानक के आधार पर काव्य-आंदोलन को भविष्य की चर्चा शुरू हो जाती है। इस चर्चा से काम नहीं बनता है। काम बनने का सीधा अर्थ है वास्तविकता से पूरी दुनिया को पहचान करने की हिम्मत को जन्म देना। यह हिम्मत भारतीयत्व में ही विद्यमान है और यह हिम्मत है इसलिए भारतीयत्व का ध्वज सदा अमरत्व का पर्याय बना हुआ है। समकालीन कविता को समग्रता में देखना सबसे बड़ी बात है। आलोचना को दरकिनार करने की अपेक्षा उसे धारदार बनाने पर जोर देना आवश्यक है, क्योंकि भारतीय आत्मा की जय-ध्वनि सदा विश्व में समरसता की भावना को लेकर चलती है और चलती रहेगी। इसलिए इस समकालीन हिंदी कविता को परम्परा से जोड़ने या पारम्परिक कविताओं की पड़ताल आवश्यक है।

केशव तिवारी ने लिखा है—हमसे क्या पूछते हो/हमारे रहने का राज़/हवा से पूछो, पूछो अंधेरे से/वो हमारे बारे में बेहतर बताएंगे।

मिट्टी का असल रंग कविता में दिखता है और उसकी असल लय वाणी जिंदगी को आलोकित करती है। असल रंग और लय की यह प्रक्रिया इतिहास बनाती है

Scanned with CamScanner

और दर्शन को ऊर्जा देती है। प्रक्रिया का यह सिलसिला सावन की फुहार बनकर न जाने मन को स्पर्श कर कहां गायब हो जाता है, जैसे खुसरो अपने मल्हार गीत में खोजते हैं, कबीर अपनी साखी में, मीरा घुंघरू की आवाज में, तुलसी अवधी से दूरन में और सूर राधा के आँसू में..... देखते-देखते सृजन चहक उठता है और रचनाओं का संसार बन जाता है, जहां परिंदे स्वच्छन्द होकर पंख खुजलाने लगते हैं, खाते तरफ से 'नव पर नव स्वर' देने जैसे गीतों की अनुगूंज सुनाई पड़ने लगती है। कलम के सिपाही रोशनी की तलाश करते हुए 'होरी' के 'गोदान' तक पहुँच जाते हैं, जब उन्हें 'धनिया' के दर्द का सच पता चलता है; तभी कहीं से ऐतिहासिक गीत गूंज उठता है–सांस चलती है किसकी, प्रश्न का यह सिलसिला बढ़ते-बढ़ते दासीदास की आंखों में आंखें डालकर पूछता है, 'सच-सच बतलाना तुम रोये थे या वह'।

जवाब मिलता है, 'चीखो नहीं अभागो, एक गीत सुनो।' इसी प्रक्रिया के दौरान आवाज आती है–'मैंने ये सब चिराग लहू से जलाये हैं तूफान, तेरी जिद है तो इनको बुझा के देख' इस आह्वान की आलोचनात्मक पड़ताल करने की कोशिश शुरू होती है। और प्रश्न उठता है–क्यों हैं समकालीन कविताएं और कैसे हैं समकालीन कविताएं, किसलिए कि हम संघर्षरत हैं। इस संग्राम में त्याग है, उत्सर्ग है और है; न्यौछावरा इतना ही नहीं है, जलना भी है।

सामाजिक निषेध को खत्म करने के लिए कविता का सहारा लेना अत्यंत जरूरी है। इस डिजिटल-युग में कविता अपनी शक्तिमत्ता और गुणवत्ता की दृष्टि से वर्तमान तकाजे को न केवल अनुभूति और संवेदना के स्तर पर समझ रही है बल्कि सामाजिक विषमताओं को बड़े फलक पर स्थापित कर रही है। सही अर्थों में कविता एक जनतांत्रिक विधा है, जो वर्तमान डिजिटल युग में जिन्दगी का व्याकरण बन गई है। यही कारण है कि इस समय कविता की क्षमता बढ़ी है, तभी तो वर्तमान युग की कविताएं दुर्दिन और दुःस्वप्नों को बयां करती है।

उल्लेखनीय है कि रचनात्मक संघर्ष के मैदान में कविता ने कवि-कर्म को रोशनी दी है। कल्पना और अभिव्यक्ति की नई दुनिया बसाने में कविता को कामयाबी ने डूबते जहाज को बचाने का सबूत पेश किया है। इस दृष्टांत की चर्चा अन्तराष्ट्रीय स्तर पर है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर के घटनाक्रमों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि रात को सुबह से मिलाने की ताकत कविता में है। इस ताकत ने कविता के विजन को सांझा-संस्कृति के पर लगा दिये हैं। इसलिए कविता की उड़ान ने पूरी दुनिया में सांझा संस्कृति को व्यापकता दी है। अब कविता अनिश्चय काल और रहस्यमय धड़कन की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति नहीं रही बल्कि जम्हूरियत की

विवेकात्मक मांग बन गई है। यही कविता का दम है, जिसे इसने जिन्दगी के संघर्ष से प्राप्त किया है।

सच तो यह है कि कविता ने इसे मानव-सभ्यता की ऊर्जस्वित जन-धारा के जरिये हासिल किया है तथा प्रवाहित इतिहास धारा के जरिये निर्मित किया है। यही धारा ऐतिहासिकता और दार्शनिकता की वास्तविक पहचान है, जिसे कविता ने जिन्दगी की सरल रेखा पर स्थापित किया है। कविता ने इस दृष्टिगोचर तथा विवेकवान दुनिया को समझाया है कि जिन्दगी सरल रेखा पर नहीं चलती है, वह वक्र-रेखा पर चलती है; जो मुसीबतों को परास्त करने के लिए तूफानों से मुठभेड़ करती है। कविता का यह अर्जित दम है, जो उसकी संवेदनात्मक धड़कन की विशेषता है। सही अर्थों में कविता अनिश्चयवाचक सर्वनाम नहीं है; कविता तो इस डिजिटल-युग में जातिवाचक निश्चयात्मक संज्ञा बन गई है। सर्वनाम से संज्ञा बनने का दम सिर्फ कविता में है। संघर्ष का सफर, कविता का दम है।

हिंदी कविता की पहुंच का दायरा बढ़ता जा रहा है, जो उसकी सामर्थ्य के कारण ही संभव हो सकता है। 21वीं सदी में हिंदी कविता की सामर्थ्य किसी से छिपी हुई नहीं है। हिंदी कविता ने अपनी दूर-दृष्टि की वजह से इस रचना जगत को एक महान विजन दिया है। इस विजन का आधार इतिहास और दर्शन है, जिसे समय और संस्कृति ने मजबूती दी है।

कविता जब अतीत के रंग को जीवन से जोड़ती है, तब कविता निश्चित तौर पर भविष्य की सुरक्षा की गारंटी देती है। कविता में अतीत की ताजगी को प्रस्तुत करना एक तरह का मोह और माया से ऊपर उठना है। सच तो यह है कि स्मृति रचना को ताकत देती है। इसी ताकत के जरिये रचना आगे बढ़ने की दिशा खोजती है। इतिहास जिस तरह साहित्य को संतुलन-शक्ति प्रदान करता है, ठीक उसी तरह कल्पना भी स्मृति के पैर में पायल बांधती है जिसके बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। क्या कारण है कि कल्पना उड़ान भरती है? इस उड़ान भरने के पीछे अंततः होता क्या है? इन दोनों सवालों को ध्यान में रखा जाय, तो स्पष्ट होगा कि जीवन को बेहतर बनाना ही परम उपासना है। इस उपासना से विमुख होने पर चाहे जैसी रचना प्रक्रिया आरंभ हो, लेकिन सृजन नहीं हो पाता है।

कल्पना और उपासना के बिना रचना-कर्म सम्पन्न नहीं होता है। इस रचना-कर्म को अंतिम रूप में अंजाम देने के लिए इतिहास से गुजरना पड़ता है इतिहास तो एक तरह से साहित्य की नब्ज है। इसके बिना साहित्य का मुकम्मल रूप ही नहीं बनता है। इतिहास किसी-न-किसी रूप में साहित्य-सृजन में विद्यमान होता है। उसकी उपस्थिति के बिना किसी वाक्य का अर्थ भी नहीं होता है। अनर्थ

Scanned with CamScanner

को अर्थवान बनाना कविता की साधना है। कविता अतीत के बल पर ही किसी अनर्थ को अर्थ बना पाती है। यही कारण है कि हर स्थिति में कविता सुकून देती है। सुकून किसी व्यक्ति को स्मृति के जरिये भी प्राप्त होता है। मुक्तिबोध ने ठीक ही कहा है कि अतीत वर्तमान को संतुलित करता है। तथा वर्तमान भविष्य का अंतिम रूप निर्धारित करता है। यही कारण है कि रचनाकार किसी रचना को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया से जब गुजरता है, तो ऐसा महसूस करता है कि क्या इसी उपादान को रचना में प्रस्तुत करना है, जिस उपादान ने सुख-दुख के क्षण में साथ निभाया है। क्या इतने साधारण उपादानों को रचना में प्रस्तुत करना है। इस भाव के उठते ही अतीत का वह क्षण जाग उठता है, जिस क्षण ने उसे सबसे अधिक दुःख दिया है।

रवीन्द्रनाथ ने इस संबंध में बहुत अच्छी बात कही है कि दुःख मानव को कुछ-न-कुछ देता है, कुछ लेता नहीं है। यदि दुःख आता है, तो कुछ देकर जाता है। इस कथन के आलोक में यह विचार करना अपेक्षित है कि दुःख क्या देता है? दुःख स्मृति को ताजा बनाता है। दुःख के क्षण चाहे जितने तकलीफदेह हों, पर इस क्षण से बाहर निकलने के बाद सुख-ही-सुख है, आनंद-ही-आनंद है। चाहे उसमें हार हो या जीत। मनुष्य कभी हारता नहीं है और टूटता है। मनुष्य हर क्षण हारने और टूटने से जूझता है। कोई चाहकर भी किसी को मार नहीं सकता है। हर व्यक्ति को अपनी समझ और शक्ति के अनुसार दैनंदिन का युद्ध लड़ना पड़ता है, इस युद्ध में उसकी जीत अवश्य होती है, क्योंकि यदि वह महसूस करे कि वह दैनंदिन का युद्ध हार रहा है, तो और कायदे से सावधान हो जाता है। उसकी सावधानी और ओजस्वी बन उठती है। इस सावधानी से उसे गंभीरता प्राप्त होती है, जो रचना कर्म को संघर्ष के मैदान में अमरता प्रदान करती है, जिस अमरता के संबंध में दुनिया कहती है कि अमुक-ने-अमुक संघर्ष पर विजय का झंडा फहराया है।

इस बारे में उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि नेपोलियन के एक सैनिक ने उससे एक जीत के मौके पर सवाल किया कि आप बिना सोचे-समझे मैदान में उतर जाते हैं और जीत भी हासिल कर लेते हैं, इसका राज क्या है? नेपोलियन ने उत्तर दिया था कि मैदान में उतरते नहीं बल्कि गंभीर होकर उतरते हैं और रास्ते में चलते-चलते युद्ध जीतने और हारने के सारे उपादानों को गले लगाते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। आगे बढ़ने की यह बात भी ऐसी है, जैसे कोई रचना के लिए आगे बढ़ रहा हो और वह उसकी पूरी तरह मदद करने के लिए तैयार हो। दुनिया के किसी साहित्य आलोचना ने अतीत पर सवाल खड़ा नहीं किया है बल्कि साहित्य-सिद्धांत ने हर वक्त ऐलान किया है कि अतीत और कल्पना ही साहित्य धरोहर हैं। इस धरोहर

का असली स्वरूप छायावादी काव्यांदोलन में दिखता है।

खासकर महाकवि जयशंकर प्रसाद के नाटकों और कविताओं में कल्पना और इतिहास का अद्‌भुत समन्वय के बिना हिंदी आलोचना का न रंग दिखता है और न रूप। यदि स्मृति नहीं होती, तो प्रसाद की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कविता 'प्रलय की छाया' और निराला कह कविता 'सरोज स्मृति' जैसी महान कविताएं पढ़ने का सौभाग्य नहीं मिलता। तो सवाल उठता है कि ऐसा क्या हो गया कि रचना की दुनिया में स्मृति को दरकिनार करने का क्रियाकलाप शुरू हुआ। इस पर ध्यान देने से स्पष्ट होगा कि जब से इतिहास का अंत होने का नारा उछाला गया, तब से रचनात्मक क्षेत्र में स्मृति को छीनने का प्रयास शुरू हुआ। इस एक ध्रुवीय विश्व में सत्य को वर्तमान समय में स्थापित करना जटिल है। सच के लिए लड़ना और कठिन है, इस सच को स्मृति के बिना बचाना और....और भयावह है।

हर विधा अभिव्यक्ति को एक तरह से आगे बढ़ाती है। अभिव्यक्ति, अनुभव की पहचान है और यही कविता की प्राणशक्ति को बचाये रखती है। इस पहचान के बिना कविता बेजान है और इसी पहचान के कारण कोई कविता बेनजीर है। इस बेजान और बेनजीर तटों के बीच से कविता की धारा स्वतः स्फूर्त ढंग से प्रवाहमान रहती है, किन्तु थोड़ी देर के लिए एक तट को बेजान मान भी लें तो काव्य के किसी एक पक्ष की उपेक्षा नहीं होती बल्कि काव्य की धारा अपनी आंतरिक शक्तियों के जरिये इस बेजान तट को प्राणस्फूर्त कर देती है।

कविता के इस दार्शनिक पक्ष से उलझने पर महसूस होता है कि कविता का पक्ष जीवन का दुखात्मक क्षण है। यही क्षण कविता को जिन्दगी प्रदान करता है, इसलिए कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ने मानवीय जीवन में दुख के महत्व को सबसे ज्यादा स्थान दिया है। यह स्थान या क्षण किसी से न तो प्रभावित होता है और न किसी से उद्वेलित होता है, पर इसका कोई एक-न-एक आधार होता है। इस आधार के बिना कविता अपना कदम नहीं उठा पाती। यानी कविता का सृजन नहीं होता। बिम्ब के बिना कविता का सृजन असंभव है। कोई यह कह सकता है कि शब्द के बिना कविता, कविता नहीं हो पाती।

एक शिविर जिज्ञासा कर सकता है कि किसकी कविता किससे प्रभावित है। कविता के मर्म को पहचानने वाले जोड़-तोड़कर यह बतला सकते हैं कि अमुक की कविता अमुक से प्रभावित है या किसी एक की वाणी को लेकर आगे बढ़ी है। कविता के विशेषज्ञ आलोचना के मानदण्डों के आधार पर कालसापेक्ष या कालनिरपेक्ष व्याख्या करते हैं। इसका अपना एक खास अंदाज है और खास महत्त्व है, किन्तु किस बिंदु से कविता के प्रभावोत्पादक उपादान उस कविता के अंतर्गत अपने आपको जीवित

Scanned with CamScanner

रखे हुए है, इसकी व्याख्या चाहे जितनी तरीके से की जाये, चाहे वह व्याख्या जितनी प्रभावशाली क्यों न हो; उस बिन्दु को खोज पाना कठिन होता है।

जिज्ञासाएं मिटती नहीं हैं। इस दुनिया में कहने के लिए जिज्ञासाएं मिटती हैं पर सच है कि इन्हीं जिज्ञासाओं के जरिये दो व्यक्ति, दो समाज या अधिक-से अधिक व्यक्ति एक-दूसरे के निकट आते हैं। समाज के विभिन्न स्तरों पर यही वह जिज्ञासा है जो एक-दूसरे के संबंध को बरकरार बनाए हुए है। यही वह काव्य-सत्य है जिस सत्य को अरस्तू ने पहचाना और बताया कि यह काव्य-सत्य ऐतिहासिक सत्य से बड़ा ही नहीं बल्कि महत्वपूर्ण भी है। आमतौर पर इस सत्य को समझना कठिन होता है। समय-सापेक्षता की बात इस संदर्भ में उठाई जा सकती है। विद्वान दावा कर सकते हैं कि उन्होंने काव्य-सत्य को समझा है और काव्य-सत्य को बड़े पैमाने पर दुनिया को समझाने के लिए उनकी योग्यता कारगर साबित हुई है। इसके बावजूद सवाल ज्यों-का-त्यों खड़ा रह जाता है। इसी के तहत बाबा नागार्जुन की बात को प्रस्तुत करना अपेक्षित है। 'कालिदास सच-सच बतलाना' में नागार्जुन ने आदि कवि कालिदास से यही तो सवाल किया था कि तुम रोये थे या यक्ष रोया था।

बाबा ने इन आंसुओं में काव्य-सत्य को ढूंढ़ने की चेष्टा की थी और उनकी यह चेष्टा पूरी तरह से सफल रही। सच्चे अर्थों में बहते आंसू और चीखते स्वर इस सत्य को अपने अंतर्गत समाहित किये होते हैं बशर्ते इन आंसुओं को देखने के लिए दृष्टि और इन चीखों को सुनने के लिए कान अपेक्षित हैं। महान मार्क्सवादी आलोचक इगल्टन ने सही कहा है कि आलोचनात्मक व्याख्याएं रचना की आभ्यान्तर शक्ति को कमजोर से कमजोरतर बनाती हैं जब कि दृष्टि सम्पन्न, क्रियान्वयन आलोचनाएं समाज और व्यक्ति को नैतिक मूल्यों से पुष्ट करती हैं। इस बनने की प्रक्रिया में अक्सर एक चुप्पी होती है। कविताएं अपने बिम्ब की ओर अभिमुख होता है, पर बिम्ब युद्धपोत जहाज की तरह सीना ताने बिना पीछे देखे आगे-ही-आगे की ओर बढ़ता है।

काव्य में परम्परा का पानी होता है। इसके बिना सृजन असंभव है। पानी ही जिन्दगी है। इस पानी पर आज चारों तरफ से हमले हो रहे हैं, उन हमलों से मुठभेड़ करने के लिए रचनाकार सामने आते हैं तथा वे सभ्यता-संस्कृति-परम्पराओं के पानी को नहीं बंटने देते हैं। इस पानी को वर्चस्ववादी संस्कृति किसी कीमत पर नहीं बांट सकती क्योंकि जनता के रचनाकार जनधर्मी काव्य परम्परा के ही आगे बढ़ाते हैं; भाषा निश्चित तौर पर माध्यम की भूमिका अदा करती है। सवाल यह है कि किस दर्शन को अपनाया गया है। यदि दर्शन समाज के अधिक-से-अधिक लोगों को आगे बढ़ने की ताकत देता है, तो लोग उस दर्शन को अपनाते हैं। रचनाकार अपनी रचनाओं

में उसे स्थान देते हैं। उसका अध्ययन तुलनात्मक तरीके से करना सराहनीय होता है, क्योंकि परम्पराओं के पानी को चारों तरफ के खतरों से बचाने की जरूरत है।

हिंदी काव्य की संस्कृति किसी मामले में आकाश की ऊंचाई से कम नहीं है। आकाश की ऊंचाई का वैज्ञानिक आधार क्या है? इस सवाल का सहज उत्तर देना कठिन है। लेकिन जब कोई प्रश्न सामने आता है तो वह अपना उत्तर भी साथ लेकर आता है। देखना यह है कि उत्तर विश्व स्तर पर ग्राह्य होने की स्थिति में है। यदि इस उत्तर की ग्राह्यता सभ्यता, संस्कृति और परम्परा में सुरक्षित हैं तो यही समझा जाता है कि उत्तर सटीक है। जीवंतता के बिना उत्तर सटीक शायद ही होता है और यही जीवंतता काव्य को काव्य बनाती है। भारतीय आत्मा के बिना संस्कृत, उर्दू और हिंदी काव्य की गरिमा पर विचार करना अंधेरे में तीर मारना है। भारत की इन तीन भाषाओं के किसी काव्य पर नजर जाने से यही लगता है कि उस काव्य में भारतीय आत्मा बोल रही है। वह सिर्फ बोलती नहीं है, बल्कि एक विशेष कालखण्ड के विभिन्न पहलुओं की विविधताओं को संजोए हुए है तथा वह हर संकीर्णता से ऊपर उठने की सलाह देती है। जब तक इस संकीर्णता से ऊपर नहीं उठा जायेगा तब तक मानव के अंतर्गत मानवत्व का जो गुण है, उसका निखार नहीं होता।

काव्य इसी गुण को निखारते हुए समाज को उच्च-से-उच्चतर भावभूमि पर प्रतिष्ठित करने का काम करता है। इसी कारणवश मानवीय रागधारा दिन-ब-दिन उज्ज्वलतम रूप को स्थापित करती है; जिस रूप पर रवीन्द्रनाथ ने विचार करते हुए कहा—"मैं केवल इतना कहना चाहता था कि जिस प्रकार पृथ्वी मेरा खेत है और तुम्हारा खेत, उनका खेत नहीं है, पृथ्वी को इस तरह जानना अत्यन्त ग्राम्य रूप में जानना है"—उसी प्रकार साहित्य मेरी रचना, तुम्हारी रचना और उनकी रचना नहीं होती। हम लोग साधारण साहित्य को इसी ग्राम्य ढंग से देखा करते हैं। इसी ग्राम्य संकीर्णता से अपने को मुक्ति देकर विश्व साहित्य में विश्व मानव को देखने का लक्ष्य हम स्थिर करेंगे, प्रत्येक लेखक की रचना में उसकी समग्रता को ग्रहण करेंगे और इसी समग्रता में सारे मनुष्यों की अभिव्यक्ति चेष्टा का संबंध देखेंगे, यह संकल्प करने का समय आ गया है।" रवीन्द्रनाथ ने राष्ट्रीय शिक्षा परिषद में वक्तव्य रखते हुए 1904 के जनवरी में यह बात कही थी उन्होंने विश्व मानव को देखने का लक्ष्य स्थिर करने पर जोर दिया, क्योंकि समाज, सभ्यता, संस्कृति और परम्परा के बिना विश्व मानव का निर्माण नहीं हो सकता। इसको बचाने का सवाल उनकी रचनाओं की प्रथमिकता है, जो विभिन्न रूपों में बार-बार उठती रही है। यही सवाल है जिस मानव को मानवीय गुणों से लैस किया है।

सही अर्थों में सभ्यता संस्कृति और परम्परा को विभाजित नहीं किया

Scanned with CamScanner

सकता। यदि राजनीतिक और भौगोलिक लकीर खींचकर सभ्यता, संस्कृति और परम्परा को बांटने की कोशिश भी की गयी, तो वह विभाजन अंतिम विभाजन नहीं होता है। इस संदर्भ को राही ने एक सवाल के जरिये समझने-समझाने का प्रयास किया। राही के इस सवाल पर विचार किया जा सकता है, सवाल है—"क्या घर के बंटवारे से बुनियाद की ईंटें भी बंटवारे की लपटों में आ जाती हैं?" यह सच है, राजनीतिक बंटवारे से उथल-पुथल होती है, लेकिन उससे सभ्यता, संस्कृति और परम्परा की आत्मा नष्ट नहीं होती। ब्रिताना हुकूमत द्वारा खींची गयी लकीर के चलते 14 अगस्त 1947 की रात के बारह बजे अचानक करोड़ों लोग पाकिस्तानी बन गये। भारत की राजनीति सीमा सीमित हो गयी। उन करोड़ों लोगों में फैज अहमद फैज भी थे। उर्दू के महान शायर हैं, उनकी कविता से क्या कोई भारतीय आत्मा को निकाल सकता है। क्या मानवता की तड़प उनकी कविता की गूंज नहीं है? ऐसे अनेक उर्दू के कवि हैं, जो पाकिस्तान चले गये, उनमें हफीज जालंधरी, मलीहाबादी और तेग इलाहाबादी आदि प्रमुख कवियों के नाम लिए जा सकते हैं। उनकी कविताओं में हिंदी-उर्दू-संस्कृत के शब्द विधान एक लक्षित होते हैं। सरहद पार जाने के बावजूद उनकी कविता की खुशबू हवा में तैरती है।

किसी विखण्डनवादी-वितंडावादी सोच में इतनी ताकत नहीं है कि हवा में तैरती उस खुशबू को रोक दे। दरिया के पानी को बांट देना इसके बहाव को रोक देना आसान होता है, पर परम्पराओं के पानी को कोई नहीं बांट सकता है। वर्तमान समय में दरिया के पानी पर कब्जा करना आसान है। इसके चलते उसके रूप और रंग बदल दिये गये, पर परम्पराओं के पानी का क्या हुआ? परम्पराओं की धारा और तेज हुई, जिसकी दास्तान संस्कृत, उर्दू और हिंदी काव्य में सुरक्षित है। कहने के लिए कोई कह सकता है कि हिंदी और उर्दू के संबंध में यह बात लागू हो सकती है, लेकिन संस्कृत के संबंध में क्या कहा जायेगा। संस्कृत के काव्य में भी विभाजन की त्रासदी का बखान आजादी के बाद हुआ।

भारत में लिखी-बोली जा रही 122 भाषाओं में त्रासदी का जिक्र हुआ है। पर वह सच है कि संख्या की दृष्टि से कम होते हुए भी गुणात्मकता की दृष्टि से बेहतरीन काव्य प्रकाशित हो रहे हैं। उनके मूल्यांकन हो रहे हैं। मूल्यांकन के स्तर पर विचार-विमर्श किया जा रहा है। पर एक सवाल जरूर है कि सिर्फ संस्कृत काव्य ही नहीं बल्कि अन्य आधुनिक आर्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित या अप्रकाशित काव्यों का मूल्यांकन खासकर तुलनात्मक ढंग से होने के बावजूद काफी धीमा है। वैसे साहित्य अकादमी द्वारा इस तरह के कार्यों को अपने तरीके से करने का प्रयास किया जा रहा है, जिसकी स्थापना समारोह में डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था—"भारतीय

साहित्य एक है, यद्यपि यह कई भाषाओं में लिखा गया है।" भारत में 14,135 व्यक्तियों की मातृभाषा संस्कृत है तथा पूरी दुनिया में 50 हजार लोग इस भाषा में बोल सकते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी काव्य का दायित्व सबसे अधिक है। हिंदी काव्य को दायित्व पालन करने का ज्ञान है। पालन करने के संदर्भ में ही इसे देखना उचित होगा। यदि इस दृष्टि से हिंदी काव्य पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि हिंदी काव्य पूरी तरह से इस दायित्व को निभा पा रहा है, उल्लेखनीय है कि पूरी दुनिया में 80 करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं तथा प्रायः 43 करोड़ लोगों की मातृभाषा होने का गौरव हिंदी को प्राप्त है। विश्व के 130 देशों में हिंदी साहित्य का पठन-पाठन होता है। इस दृष्टि से उर्दू पर विचार करना अनुचित नहीं होगा। भारत में प्रायः 6 करोड़ लोगों की मातृभाषा उर्दू है। विश्व के 21 देशों में उर्दू बोली जाती है। संस्कृत के संदर्भ में उस आंकड़े को प्रस्तुत करते हुए कहना पड़ता है कि काव्य प्रकाशित हो रहे हैं, उन काव्यों में किसी अन्य भाषाओं के शब्द, वाक्य और विचार के प्रति किसी तरह का परहेज नहीं देखा जाता है।

यही तो परम्परा का पानी है, जिसकी धारा तेज गति से चल रही है। काव्य के जरिये यह पानी सुरक्षित रहता है। जहां लिपिगत गतिरोध भी दरकिनार हो जाते हैं। कौन नहीं जानता कि फारसी लिपिबद्ध 'पद्मावत' हिंदी काव्य की शिखरणी है। अमीर ने अपने काव्य-सृजन के जरिये भारतीय सभ्यता-संस्कृति की एकता को मजबूत करते हुए तमाम अशुभ शक्तियों को जवाब देने के लिए आम लोगों से लामबंद होने का आग्रह किया। परम्परा को समझे बिना यह लामबंदी असंभव है। परम्परा के पानी को देखने के सिलसिले में रहीम और रसखान को नहीं भुलाया जा सकता। रहीम और रसखान दोनों दो मिजाज के कवि हैं, किन्तु मकसद एक है।

भारत की धरती पर मैत्री को किस तरह बढ़ावा दिया जा सकता है नीति और प्रेम के बिना किसी का हृदय जीतना मुश्किल होता है। रहीम को नीतिपरक दोहों तथा रसखान को प्रेमपरक दोहों के लिए हिंदी काव्य में सदा स्मरण किया जायेगा। उनके यहां एक साथ संस्कृत और फारसी की शब्दावली देखने को ही नहीं मिलती, बल्कि उनके यहां संस्कृत, अरबी, फारसी, अवधी के शब्दों का जोरदार और मनमोहक प्रयोग हुआ है। रसखान ने 'पुरन्दर', 'गिरि' जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग किया, तो उसी तरह 'ताक', 'अजबो', 'खुमार' जैसे शब्दों के जरिये अपने काव्य सौन्दर्य को निखारा है तथा हिंदी काव्य को अग्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। ऐसा तभी संभव होगा, जब कोई रचनाकार काव्य के जरिये संस्कृति और परम्परा को एक दस्तावेज के रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत करने की कला में सिद्ध-

Scanned with CamScanner

हस्त हो।

रग-रग में बसे बिना इस तरह की सिद्धहस्तता हासिल नहीं की जा सकती है। यही सिद्धहस्तता परम्पराओं के पानी को पहचानने की नजर देती है; तभी तो कविता जंग के मैदान में विश्व-करुणा की तरह डटी रहती है, क्योंकि उसे इंकलाब की पूरी समझ है। कवि नरेश कुमार शाद ने सच ही कहा है—मुफलिसों के सिपाहखाने में/आंसुओं के चिराग़ जलते हैं/इन चिराग़ों की झिलमिलाहट में/सैकड़ों इन्कलाब पलते हैं।

7

निर्मला पुतुल के काव्य में आदिवासी जीवन का यथार्थ

डॉ. मनप्रीत कौर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरु नानक देव महाविद्यालय
गुरु तेगबहादुर नगर, मुम्बई-400037

आदिवासी शब्द का अर्थ है—मूल निवासी। ये जंगल में रहते हैं, जंगल के साथ अपना जीवन जीते हैं। हमारे सभ्य समाज ने मूल निवासी से इन्हें अनुसूचित जनजाति बनाकर हाशिए पर खड़ा कर दिया। वह अपनी मर्जी के मालिक सरकारी नीतियों के कारण मजदूर बन गए।

आज हम वैश्विक स्तर पर पर्यावरण दिवस मनाते हैं। पर्यावरण बचाने के नारे लगाते हैं, जुलूस निकालते हैं किंतु प्रकृति के पुजारी, प्रकृति के रक्षक आदिवासियों को खदेड़कर वन काटकर कंकरीट के जंगल बनाते हैं। अपने हक की बात करने पर आदिवासियों को चोर, लुटेरे और नक्सली करार देकर मारने से पीछे नहीं हटते। मूल निवासी को नया नाम जंगली भी दे दिया है।

भारत में तमाम साम्राज्यों और सभ्यताओं के विकास में जंगलों का गहरा महत्व रहा है। लोहे, तांबे, सोने व चांदी के अयस्क, कोयले और हीरे, कीमती इमारती लकड़ी, ज्यादातर जड़ी बूटियां और पशु उत्पाद (मोम, लाख, शहद) और पशु जंगल से मिलते हैं। धन लोलुप उद्योगपतियों ने आदिवासियों को निशाना बनाया। उनकी जरूरतों से आंखें मूंद लीं परंतु उनकी जर, जमीन, और औरत पर आंखें गाड़ लीं।

नई आर्थिक नीतियों ने सरकार और उद्योगपतियों को विकास के नाम पर आदिवासियों को लूटने की खुली छूट दे दी। भूमंडलीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बिना रुकावट के प्राकृतिक साधन मुहैया करवाना सरकार की जिम्मेदारी

Scanned with CamScanner